International Journal of Applied Research 2019; 5(1): 134-136

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(1): 134-136
www.allresearchjournal.com
Received: 14-11-2018
Accepted: 19-12-2018

ललित कुमार झा
इतिहास शिक्षक, डी0 ए0. वी0 पब्लिक स्कूल, चूनाभट्ठी, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
ललित कुमार झा
इतिहास शिक्षक, डी0 ए0. वी0 पब्लिक स्कूल, चूनाभट्ठी, दरभंगा, बिहार, भारत

प्राचीन भारत में शिल्पी वर्ग एवं राज्य का नियंत्रणः एक अनुशीलन

ललित कुमार झा

सारांश
सप्तांग राज्य सिद्धान्त के विवेचन के तहत कोष के संचय और उसके सम्यक संरक्षण पर विशेष ध्यान देते रहने की बातों को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। कौटिल्य के शब्दों में कोष ही राज्य का मूल है । यह संचित और संरक्षित नहीं तो राज्य की कल्पना भी साकार नहीं हो सकती। अस्तु कोष का क्षेत्र बहुत ही व्यापक और विस्तृत है । चल–अचल सम्पति के स्रोत भी इसी में अन्तर्भक्त हैं पर रत्नों का संचय तो इसके उत्तम स्वास्थ्य का परिचायक है । अर्थशास्त्र में रत्न परीक्षा की नियमावली दी गयी है। संग्रह के पूर्व इनकी शुद्धता का एक खास मकसद था। मोती के कोई एक ही स्रोत नहीं थे। इसके .सही–सही स्थान निर्धारण ही मूल्य के आकलन का आधार बनता था। उच्च और निम्न कोटि के मोती की पहचान करके उसका उपयोग अलंकारों व निर्माण के लिए हो सकता था। उत्तम मोती का सचय कोष की वृद्धि करता है। इस पत्र में प्राचीन भारत में शिल्पी वर्ग एवं राज्य के नियंत्रण पर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्दः प्राचीन भारत; शिल्पी वर्ग; राज्य नियंत्रण; कौटिल्य

प्रस्तावना
कोटिल्य ने साम्राज्य की जैसी रूपरेखा अनुसंशित की है उसमें सभी आर्थिक साधनों के उपर राज्य के नियंत्रण की बातों को ही ज्यादा महत्व दिया गया है। ऐसी स्थिति में सोनारों को खुली छूट देने का कोई सवाल ही पैदा नहीं हुआ था। ये जब जैसा सामान बनाते थे उसकी शुद्धता और गुणवत्ता इन दोनों की सूक्ष्म जॉच कराते रहने का एक खास मतलब था। कोई भी सामान मनमानी कीमत पर बेचा नहीं जा सकता था। ग्राहकों के शोषण को रोकने आर उन्हें अदा की गयी कीमत के अनुसार सामान मुहैया कराने के सम्बन्ध म कौटिल्य ने कई तरह का दिशा निर्देश दिया है। शासन की ओर से एस अधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिये जो सोनारों की कार्यप्रणाली पर अपनी चौकन्नी निगाह रखने में पूरी तरह सक्षम हो सके। अथशास्त्र बताता है कि सोनार जहाँ काम करते थे उसे अक्षशाला कहा जाता था। यह राजमार्ग क बीचोबीच स्थापित थी। इसमें उँची रसूख और साख वाले सोनार ही बैठकर अपना काम कर सकते थे। कच्चा सोना कई स्रोतों से प्राप्त होता था। इसके मूल्य निर्धारण का यही आधार था। शुद्ध सोने की बात ही कुछ और थी। पारद याचांदी का मिश्रण इसकी शुद्धता को दुष्प्रभावित कर देता था। यही कारण है किसो ने में मिलावट को रोकने के लिए कई तरह के कठोर निर्देश दिये गये थे।
शिल्पियों को प्रतिबन्ध के दायरे में लाने की बात व्यावहारिक दृष्टि से समीचीन थी। अर्थशास्त्र के अनुसार मूल्यवान धातु का काम करने वाले शिल्पियों के उपर ही इस तरह की पाबंदी थी जबकि अन्य शिल्पियों के लिए ऐसी कोई वर्जना या प्रतिबन्ध नहीं था। अलबत्ता कौटिल्य ने यह अवश्य निर्देशित किया है कि अपनी निजी पूंजी से दूकान खड़ा करने वाले सोनार भी आमलोगों से ज्यादा मेल जोल नहीं बढ़ा सकते। यहॉ राज्यकर्मी ही जॉच पड़ताल की गरज से जा सकते थे। इस नियम का उल्लंघन करने पर गंभीर दण्ड दिया जा सकता था। यह इस बात का सूचक है कि शिल्प की मोलिकता और इसके उत्पादन को लेकर शासन बहुत गंभीर था द्य कोई भी कारीगर साना या चांदी का टुकड़ा लेकर दूकान में प्रवेश नहीं कर सकता था। कौटिल्य ने यहाँ तक कहा है कि सोने या चांदी का आभूषण बनाने के काम में जितने भी कारीगर लगे हों उनकी गहरी जॉच आगमन और प्रस्थान काल मे निश्चित रूप से की जानी चाहिये। कोई भी अधबना सामान या उपकरण कार्यशाला से बाहर नहीं जा सकता था। सोने की जितनी मात्रा आभूषण निर्माण के निमित्त सोनारो को दी जाती थी उसे कार्यशाला में ही बडी सावधानी के साथ रखा जाता था, कौटिल्य के इस निर्देश का भी कोई महत्त्व नहीं कि मूल्यवान धातुओं से जितने तरह के आभूषण बनाये जाय उनके ऊपर शासन द्वारा अधिक्त अधिकारी की संयुक्त मोहर लगनी चाहिये ताकि ग्राहक उसे पूरे विश्वास के साथ खरीद सके ।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मूल्यवान धातुओं की जाँच पडताल करते रहने की जितनी भी विधियाँ अनुशंसित हैं उनसे सोनार कहाँ तक थे– इसका कोई ठीक–ठाक पता नहीं चलता। फिर भी इन्हें एक झटके से नकारा नहीं जा सकता। सोना हो या चांदी उसे शुद्ध और काम के योग्य बनाने के लिए कई तरह के द्रव और रसायन के प्रयोग की अनुशंसा की गयी थी।

शिल्पी चाहे जिस किसी भी मूल्यवान धातु का सामान क्यों न बनायें उसे एक नियत स्थान से ही बेचा जाना चाहिये– ऐसा कोटिल्य का अभिमत था। इससे न केवल अनधिकत निर्माण को रोका जा सकता था बल्कि चोरी छुपे सामानों की विक्री को भी प्रतिबन्धित किया जा सकता था द्य इस नियम का उल्लंघन दण्डनीय था। अर्थशास्त्र के तमाम तरह के निदेशों का निचोड यही है कि मूल्यवान धातुएं राज्य की स्थायी निधि हुआ करती थीं। इसीलिए इसकी चोरी करने या अनधिकृत रूप से हेराफेरी करने का दोषी पाये जाने पर लोगों को दण्डित किया जा सकता था। इन्हें खान के काम में लगवाया जाता था। परन्तु इस तरह का दण्ड चुल्क नहीं चुका पाने की स्थिति में ही दिया जा सकता था।

.. अर्थशास्त्र के अनुसार प्रतिबन्ध को प्रभावी बनाने के लिए एक अध्यक्ष की नियुक्ति होनी चाहिये। खान से धातुओं के दोहन और फिर उसे काम के योग्य बनाने तक की तमाम क्रियायें इसी की देखरेख में पूरी होती थीं । एक–एक धातु का परिशोधन करने वाली कर्मशालायें अलग–अलग स्थापित हों यही कोटिल्य का अभिमत थाद्य क्रय–विक्रय की व्यवस्था को बनाये रखने में खनिक कर्माध्यक्ष की भूमिका उजागर हो रही थी।

कोटिल्य ने शिल्प पर नियंत्रण और प्रतिबन्ध से सम्वन्धित जिस व्यवस्था को बनाये रखने की बात कही है उसका दायरा बहुत ही विस्तृत है। यद्यपि मूल्यवान धातुओं के संग्रह का एक खास तरह का मकसद था पर खपत के लिहाज से सोना से बढ़कर कोई भी दूसरी मूल्यवान धातु नहीं थी। सोने चांदी का काम अर्थात् इसके आभूषण कहॉ पर बनाये जॉय इसके लिए शासन की ओर से स्थान के निर्धारण का औचित्य था। इसी नियत स्थान पर एक द्वार युक्त चतुःशाल बना कर उसमें अक्षशाला स्थापित करवाने का सम्बन्ध में कौटिल्य ने निर्देश दिया है। शिल्पियों को यहीं बैठकर काम करते रहने की अनुशंसा है। विशिखा उस स्थान को कहेंगे जहाँ सोने चांदी की दूकानें सजा करती थीं। शासन की ओर से अनुज्ञा प्राप्त करीगर ही सोवर्णिक थे। ये गहनों का व्यापारी भी कर सकते थे। डा0 बसाक बताते हैं कि सोने के गहनों की जाँच पड़ताल करने वाले राजपुरूष के रूप में इन्हीं की गणना होती थी। समझने की बात यह है कि सौवर्णिक रत्न विभाग को नियंत्रित तो करते थे पर उनकी हैसियत सुवर्णाध्यक्ष से नीची होती थी। तात्पर्य यह कि अर्थशास्त्र द्वारा जिस तरह की व्यवस्था अनुशंसित है उसे देखने से तो यही लगता है कि मौर्यकाल तक आते–आते स्वर्ण उत्पाद और इससे जुड़कर अपने चमत्कारिक शिल्प को प्रदर्शित करने वाले सोनारों एवं जौहरियों के ऊपर शासन का सीधा नियंत्रण हो गया था। स्यात् इन्हीं कारणों से मूल्य का निर्धारण सोने की शुद्धता और उसकी गुणवत्ता के आधार पर किया जा रहा था। प्रसंगवश अर्थशास्त्र में स्वर्णके प्रभेदों और उसके अनेक स्रोतों का जितनी गहराई के साथ विचार किया गया है उसका तर्कसम्त आधार नहीं है– यह मानकर चला नहीं जा सकता।

अर्थशास्त्र बताता है कि सोनारों के लिए बनीं अक्षशाला में किसी और का प्रवेश वर्जित था। कदाचित् कोई दुस्साहस कर बैठता तो उसका स्वस्वहरण किया जा सकता था। कौटिल्य ने यह सुझाया है कि अक्षशाला के भीतर का पूरा का पूरा सामान सीधे राज्य की सम्पत्ति है। इसकी विक्री से राजस्व प्राप्त होता है । सोना चांदी के सामान की चोरी या किसी गैर वैधानिक तरीके से उसका घोटाला करने पर अधिकारी को भी दण्डित किया जा सकता था। अर्थशास्त्र संकेत करता है कि अक्षशाला में कई कामगार एक साथ बैठकर काम कर रहे होते है। कोई खालिस सोने के गहने की गढ़ाई का काम कर रहा होता है तो कोई इसका गुटका बनाता है। सोने के पात्र भी यहीं बनते हैं। जिस ग्राहक की जैसी मांग होगी उसी के अनुसार सामान भी तैयार किये जायेंगे। शिल्पियों के इस काम के सहयोगियों के रूप मे भाथी चलाने वाला परिचारक और धूलिशोधन करने वाले सहायक भी हो सकते है। अक्षशाला से बाहर जाते समय इन सबकी सघन जॉच न हो ऐसा मानकर चला नहीं जा सकताद्य सावधानी का आलम तो यह कि कारीगर अपना ही उपकरण अपने साथ ले नहीं जा सकते। अर्थशास्त्र के इस निर्देश का भी भारी महत्त्व है कि अक्षशाला में गहनों की गढ़ाईं के लिए जितनी मात्रा में सोना आता था उसी के बरावर वजन का तैयार माल किसी साक्षी के सामने राजकीय पंजी में दर्ज किया जाना चाहिये। सायं और प्रातः इन दोनों ही पारियों में कर्त्ता स्वर्णकार) और कारयिता (अध्यक्ष) की संयुक्त मुहर से अंकित स्वर्ण उत्पाद को अक्षशाला के भीतर रख जाने के सम्बन्ध में कौटिल्य ने बहुत सोच–विचार किया है।

कौटिल्य के अनुसार शासन की ओर से नियुक्त सौवर्णिक एक ऐसे अधिकारी के दायित्त्व का निर्वहन कर रहा था जिसके उपर लोग भरोसा करके सोना या चांदी दे दिया करते थे। यही अक्षशाला में काम को करने क लिए अधिकृत शिल्पियों के हाथों में सोने चांदी का खण्ड देकर उनके काम पूरा करा सकता था। तैयार सामान की शुद्धता की गारटी बतौर ठप्पा लगा कर दी जाती थी। यह सारा काम जैसा कि कौटिल्य का कहना है, सौवणिक की देखरेख में ही पूरा होता था। अर्थशास्त्र यह भी बताता है कि शिल्पियो द्वारा तैयार किये हुए सामान में क्षय की मात्रानिर्माण कालिक छीजन भी निधारित कर देनी चाहिये। सोने और चांदी में इसकी मात्रा भिन्न भिन्न हो सकती है। इसकी भरपायी ग्राहक ही करता है। मिलावट का धंधा करने वाले शिल्पी माफी के योग्य नहीं हैं। सोने चांदी में मिलावट का जितना प्रतिशत होगा उसी के अनुरूप दण्ड भी निर्धारित किया जाय। यह पूर्व साहस दण्ड से लेकर उत्तम साहस दण्ड तक हो सकता है पर इन सब के लिए मिलावट की मात्रा का भी ध्यान रखना होगा। अर्थशास्त्र के विवेचन से यह स्पष्ट है कि मौर्यकाल में कोई भी सोने चांदी का सामान अक्षशाला से बाहर नहीं बनवाया जा सकता था। इस नियम का उल्लंघन करने पर बारह पण का अर्थदण्ड लगाया जा सकता था देखने की बात यह है कि इस तरह के अनुचित कार्य के लिए अर्थशास्त्र में भिन्न–भिन्न तरीके से दण्ड देने की अनुशंसा की गयी है। शिल्पी को कम दण्ड देने की बात कही गयी है क्योंकि वह अपना श्रम और हुनर बेचा करता है जवकि निर्माता को कच्चे माल की आपूर्ति से लेकर उसके लिए आवश्यक पूंजी जुटान तक के काम को अंजाम तक पहुँचाना होता है। साफ शब्दों में कहें तो निर्माण जनित– किसी भी त्रुटि के लिए ले देकर वही जिम्मेवार होता है। स्यात् इन्हीं कारणों से उसके उपर कौटिल्य ने दुगुना दण्ड लगाने का समर्थन किया है। ऐसे संकेत हैं कि सोना चांदी या दूसरी मूल्यवान धातुओं का सामान बनाने में धोखाधडी या वंचना का व्यवहार उन्हीं लोगों के स्तर से होता है जिन्हे शासन द्वारा काम के लिए अधिकत नहीं किया गया रहता। अर्थशास्त्र के विवरण यदि सत्य और प्रामाणिक हैं तो अनधिकत रूप से गहनों के निर्माण में लगे शिल्पी हा या कोई और उनके उपर दो सौ पण का अर्थदण्ड लगाया जा सकता है या उन्हें अंगूली के विच्छेदन का दण्ड दिया जा सकता है। बात यही तक सीमित नहीं है। कौटिल्य ने सोनारों को अपनी मर्जी से बटखरे और तराजू रखने की छूट नहीं दी है। एतदर्थ माप का मानकीरण करने वाला अधिकारी (पौतवाध्यक्ष) शासन की ओर से नियुक्त होना चाहिये। यही उन्हें तराजू और बटखरे देने के लिए सक्षम अधिकारी हो सकता है।

अर्थशास्त्र बहुतेरे उदाहरणों के आधार पर यह स्पष्ट कर देता है कि सोने चांदी के गहनों में ठगी का धंधा मुख्य रूप से उसके

माप तौल में ही किया जा सकता है। एक तराजू को बदल देने से ग्राहकों के शोषण को नहीं रोका जा सकता। कमानीदार तराजू को दूकानदार अर्थात सोनार जैसा चाहे झुका सकता है। इसके लिए तराजू में छेद करके सीसा या पारा भर दिया जाय तो वजन कुछ का कुछ हो सकता है । हवा का रूख जिस ओर होगा तराज स्वतः झुक जायेगा। उसकी रस्सी की कई गाठें भी हो सकती हैं। दोनों पलड़े भी दोषयुक्त हो सकते हैं । उलझे हुए सूत्र वाले तराजू भी होते हैं । एक सीध में जब तराजू नहीं हों तो तौल ठीक कैसे आयेगा? सोनार ठगी का एक दूसरा रास्ता भी अखितयार कर सकते हैं । दो भाग रजत और एक भाग तांबा का मिश्रण कर देने से ठगी का जो रास्ता निकलता है उसे त्रिपुटक कहा जायेगा । इसी से शुद्ध अर्थात् आकर सोने को अपहृत कर दिया जाता है । अर्थशास्त्र बताता है कि ठगी का यह रास्ता त्रिपुटिका पसारित के नाम से जाना जाता है। हम यह निष्कर्ष निकाल सकतेहैं कि शासन का कठोर नियंत्रण होते हुए भी सोनारों ने ठगी का नायाब तरीका दूढ़ लिया था।

कौटिल्य की विस्तृत चर्चा से यह स्प्ष्ट है कि चमकते सोने को पिघलाने से लेकर उससे गहनों की गढ़ाई तक के काम में ठगी के नये–नये तरीके सोनारों द्वारा विकसित कर लिये गये थे। गहना चाहे कोई भी हो उसमे किसी दूसरी धातु का मिश्रण करदेने पर उसका स्वरूप विकत हो जाता है। अब ऐसी स्थिति में उसे बार–बार तपाने और पानी में डालकर ठण्डा करते रहने की जरूरत है। कौटिल्य का यह कथन भी समीचीन लगता है कि शासन द्वारा नियुक्त अधिकारियों द्वारा अहर्निश जॉच पड़ताल करते रहने और कठोर दण्ड व्यवस्था के लागू कर दिये जाने के बावजूद सोनार शुद्ध धातु को अपहृत करते रहने की योजना बनाते ही रहते हैं। कहने का मतलब यह कि आभूषण के निर्माण में ठगी, फरेब और हेराफेरी का धंध बदस्तूर जारी रहता है । यह सोनारा के हाथ की सफाई का कमाल है कि वे देखते–देखते ग्राहकों का माल उड़ा दंते हैं। वजन करते समय बाटों की हेराफेरी कर देना मामूली सी बात है। भद्ठी मे गरम करते समय सोना को इधर से उधर आसानी से कर दिया जाता है। ठोक–ठाक करते समय भी धातु का कुछ अंश बरबाद होता है और ले देकर इससे नुकसान तो ग्राहकों का ही होता है । तरलीकृत सोना जिस पात्र में रखा जाता है तो उससे भी चोरी का रास्ता ढदूढ़ा जा सकता है। मोर के पंख से सोने के टुकड़ों को झपट लेना यही क्रियायें ठग विद्या की सूचक है । ग्राहक यदि सामने भी बैठकर बनाये तो सोनार किसी रोचक कहानी को सुना–सुना कर उसका ध्यान हटाकर माल को हड़पने में देरी नहीं करते द्य शिर खुजलाने के बहाने भी सोने का कुछ भाग झपटकर रख लेना मामूली सी बात है। अर्थशास्त्र में ठगी का वह घिनौना रूप भी वर्णित है जब सोनार अपने ही गुप्तागों में माल छपा कर ग्राहकों को बेवकूफ बनाने से नहीं चूका करते । गहनों की गढ़ाई के काम में भी चोरी का रास्ता निकाला जा सकता है। मक्खी उड़ाने के बहाने से स्वर्णकणों को कहीं से कहीं फेंक दिया जाता है। पसीना आदि देखने के बहाने ग्राहकों का ध्यान हटाकर सोने की काट–छॉट कर ली जा सकती है । कुछ इसी अंदाज में धौंकनी चलाने या छिछली बाली के प्रयोग के बहाने भी सोने की चोरी के तकनीक विकसित की जा सकती हैद्य आग में पहले अपद्रव्य डाल दिया जाता है और तब सोना। कुछ समय बाद इसे सोनार हस्तगत कर ले तो इसमे आश्चर्य कैसा? ग्राहकों के शोषण का यह नायाब नमूना है। गहनों की गढ़ाई के काम में हथलपकी– यह सुनारों का चिरपरिचित अंदाज है। सोने की तरह चांदी की मिलावट भी उसे त्याज्य बना देती है। अर्थशास्त्र के अनुसार सीसा मिला देने से चांदी मछली की तरह दुर्गन्ध पैदा करती है। मैल को बड़ी आसानी से ग्रहण कर लेती है। यह छने से रूखी और कठोर या खोंटी होने पर गहने के निर्माण के लिए भी उपयोगी नहीं रह जाती फिर भी इसका ठगी के सहारे इस्तेमाल होता है । चूंकि इसमें अपद्रव्य मिला होता है इसीलिए यह कान्तिविहीन होती है ।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत में कौटिल्य को छोड़ शायद ही कोई दूसरा ऐसा राजनीतिक विचारक है जिसने सोना चांदी के सामानों की विविधता से लेकर उनकी गुणवत्ता तक के सम्बन्ध में इतनी विस्तृत छानबीन और मीमांसा की हो । अस्तु आभूषणों के निर्माण में लगे शिल्पियों के कई नाम हो सकते हैं और इसका निर्धारण उनके कार्य की प्रकृति को देखते हुए किया जाना चाहिये । ठोस अंगूठी बनाना, भूंगारादि का निर्माण, सोने के बड़े–बड़े पात्रों को बनाना, छोटे–छोटे बर्त्तन भाड़े की गढ़ाई, टुकड़ों को जोड़कर आभूषण बनाना जैसे करधनी, पायजेब, सिकड़ी आदि और इसके अतिरिक्त रसादि भावित आभूषण को बनाना ये सब के सब कार्यक्रम होते थे। इनके निर्माण को गति देने में शासन की ही प्रधान भूमिका है। गहना सोने का हो या चांदी का इसमे धोखाधड़ी के कई रास्ते निकाले जा सकते है। अर्थशास्त्र सोनारों द्वारा आविष्कत ठगी के कई रास्तों पर दृष्टिपात करते हुए उन्हें नियंत्रित किया या रोकने के उपायों पर गंभीर विचार करता है।

संदर्भ

1. बील, एस0, 1977, बुद्धिस्ट रेकर्ड ऑफ वेस्टर्न कंट्रीज, का0, पृ. 89
2. अर्थशास्त्र 2.11, 01–02
3. अक्षशालामनायुक्तोनोपगच्छेत् ।। कौ0 अ0 2–13, 30–36
4. सौवर्णिक पौरजानपदानां रूप्यसुवर्णभादेशनिभः कारयेत् ।। कौ0 अ0 2. 14 दृ 01
5. तप्त कलधैतकयोः काकणिकः सुयर्णो क्षयोदेयः । वही 2. 14 . 8